☐ **डा० अमरनाथ पाण्डेय** एम. ए., डी. फिल
[अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग,
काशी विद्यापीठ, वाराणसी]

अनेकान्त एक बौद्धिक व्यायाम नहीं है, वह समता का दर्शन है। समता के बीज से ही अहिंसा का कल्पवृक्ष अंकुरित हुआ है। अतः अनेकान्तदर्शन एक जीवंत अहिंसा-समता का दर्शन है। विद्वान दार्शनिक डा० पांडेय की सार पूर्ण शब्दावली में पढ़िए।

अनेकान्तदर्शन—अहिंसा की परमोपलब्धि

☐

जैनदर्शन में आचार का विशेष महत्त्व रहा है, इसीलिए जीवन में अहिंसा के पालन का उपदेश स्थल-स्थल पर विन्यस्त किया गया है। जैन मुनियों के जीवन में अहिंसा व्याप्त रही है। उन्होंने अहिंसा की सूक्ष्म व्याख्या की है और उसके सभी पक्षों का सम्यक् उन्मीलन किया है। सारी परिस्थितियों के समाधान के लिए अहिंसा के मार्ग का निर्देश किया गया है।

मनुष्य जो काम शरीर से नहीं करता, उसके सम्बन्ध में भी चिन्तन करता रहता है। मन में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उठते हैं, जिनसे हम आंदोलित होते रहते हैं। हमारा चित्त सदा अशांत रहता है। ऐसा क्यों है? हमारे जीवन में अनेक सम्बन्ध हैं। उनका प्रभाव हमारे चित्त पर पड़ता है। प्रभाव के कारण चित्त में हलचल होती है। इससे चित्त का शांत, गम्भीर स्वभाव विकृत होता है। ऐसी स्थिति में चित्त अपनी निर्मल–शांत प्रकृति में समाहित नहीं रहता। यही कारण है कि हम परम शांति का दर्शन नहीं कर पाते।

साधक प्रयत्न करता है कि उसका जीवन ऐसा हो जाय कि उसके मानस का निर्मल स्वरूप विकृत न हो। उसका मन अगाध शांत सागर की भाँति अवस्थित हो। इस स्थिति की प्राप्ति के लिए निरन्तर साधना करनी पड़ती है। अहिंसा का सम्बल लेकर चलने वाला साधक अपने लक्ष्य तक पहुँचता है। अहिंसा का स्वरूप बड़ा ही सूक्ष्म है। इसके सभी परिवेशों को समझना पड़ता है। कोई किसी जीव को पैर से दबा देता है, कोई किसी पशु को पीट देता है, कोई किसी के शरीर पर प्रहार करता है, कोई किसी की हत्या कर देता है—इस प्रकार की अनेक हिंसायें होती रहती हैं। इनसे हिंसक का चित्त आंदोलित होता है, चित्त का शांत-निर्मल स्वभाव विकृत हो जाता है। जितनी बार इस प्रकार की घटनायें होती हैं, उतनी बार चित्त पर उसी प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं। इससे हिंसक के जीवन में भय, हलचल, उद्वेग आदि व्याप्त हो जाते हैं। मुनियों ने इन सारे प्रसङ्गों का आकलन किया और घोषणा की कि अहिंसा जीवन का लक्ष्य है। अहिंसा के पथ पर चलने वाला साधक पहले बड़ी कठिनाई का अनुभव करता है। वह धीरे-धीरे उन सभी कर्मों से विरत होने का प्रयत्न करता है, जिनसे किसी भी जीव की किसी प्रकार की क्षति होती है। व्यक्ति में उस समय क्रोध उत्पन्न होता है, जब कोई उसे धक्का दे देता है या उसके लिए अपशब्द का प्रयोग करता है। वह धक्का देने वाले व्यक्ति को धक्का देना चाहता है या अपशब्द का प्रयोग करने वाले व्यक्ति के लिए अपशब्द का प्रयोग करना चाहता है। यदि व्यक्ति इन कार्यों से विरत रहे, तो अहिंसा का प्रारम्भ हो जाता है। उद्वेजक प्रसङ्गों से चित्त में किसी प्रकार का विकार नहीं उत्पन्न होना चाहिए। जब कर्म, वचन और मन इन तीनों में अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है, तभी अहिंसा का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत होता है। कर्म की अहिंसा से वचन की अहिंसा सूक्ष्म है और वचन की अहिंसा से मन की अहिंसा सूक्ष्म है। मनुष्य प्रायः ऐसे वचन का प्रयोग करता रहता है, जिससे किसी की हानि हो जाती है, किसी का मन खिन्न हो जाता है। यह भी हिंसा है। इसी प्रकार मनुष्य जब मन में सोचता है कि किसी की हानि हो जाय, तब मानसिक हिंसा होती है। आचार्यों ने हिंसा के इन पक्षों पर विचार किया और बार-बार चेतावनी दी है कि हिंसा न कर्म में आये, न वचन में और न मन में ही। जीवन में कर्म की हिंसा के प्रसङ्ग कम होते हैं, वचन और मन की हिंसा के प्रसङ्ग अनेक। मनुष्य प्रतिदिन वाचनिक और मानसिक हिंसा करता है। वह किसी को डाँटता है, किसी के लिए अपशब्द का प्रयोग

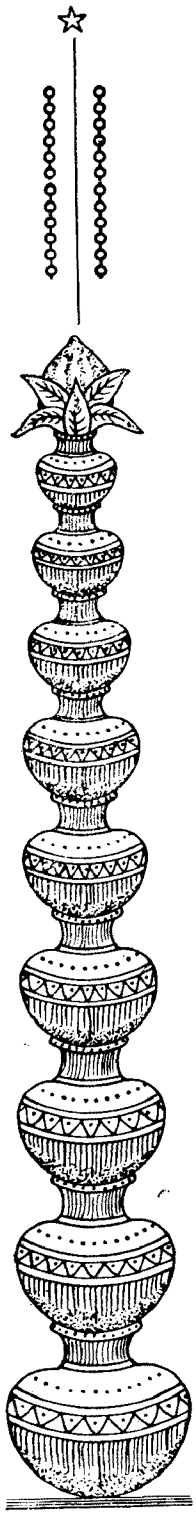

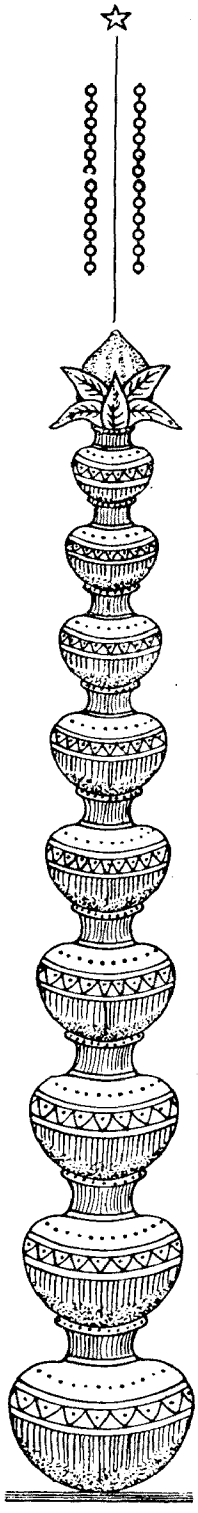

करता है, किसी के विचारों का खण्डन करता है, मन में द्रोह चिन्तन करता है, दूसरों को क्षति पहुँचाने के उपायों की खोज करता रहता है। इससे हिंसा व्याप्त होती है और समाज पीड़ित होता है। मनुष्य अपने वचन से दूसरे का प्रीणन-आह्लादन करे और मन में मानव कल्याण की भावना करे। यही सन्तों की दृष्टि है, उनकी वाणी का अमृतद्रव है।

'स्याद्वाद' से वचन-शुद्धि और 'अनेकांतदर्शन' से मानस-शुद्धि होती है। मैं जो कह रहा हूँ, वही सत्य है और दूसरा जो कहता है, वह सत्य नहीं है, यह दृष्टि तात्त्विक नहीं है। हमें वस्तु के जो धर्म दिखायी पड़ते हैं, उन्हीं के आधार पर हमारा निर्णय होता है। यतः वस्तु के अनन्त धर्म हैं और उनमें से कुछ को ही हमने देखा है, अतः वस्तु के सम्बन्ध में हमारी धारणा विशेष परिधि में सत्य है। दूसरे ने वस्तु के जिन धर्मों को देखा है, उनके आधार पर अपनी धारणा बनायी है, अतः उसकी धारणा भी विशेष स्थिति में सत्य है। अनेकांतदर्शन से मानसशुचिता—अहिंसा की संप्राप्ति होती है, अतः अनेकांतदर्शन में अहिंसा की चरम परिणति है।

अनेकांतदर्शन और जीवन

अनेकांतदृष्टि का सम्बन्ध जीवन से है। जीवन की सारी समस्याओं और हलचलों की विभावना के बाद ही इस दृष्टि का उदय हुआ है। अनेकांतदर्शन को केवल चिंतन के स्तर पर रखना भ्रम है। यह जीवन के विषय में निर्मल दृष्टि है। इसको जीवन से मिलाकर सँवारना पड़ेगा। जब अनेकांतदृष्टि से निर्मित जीवन का साक्षात्कार होगा, तभी अनेकांतदृष्टि सार्थक होगी, उसकी सभी आकृतियों की स्पष्ट रूपरेखा अङ्कित की जा सकेगी। अनेकांतदृष्टि जब तक जीवन में उतरेगी नहीं, तब तक वह अरूप रहेगी। यह जीवनदृष्टि जब कर्म के धरातल पर आती है, तब कुछ क्षेत्रों को प्रभावित करती है; जब वचन के धरातल पर आती है, तब उससे अधिक क्षेत्रों को प्रभावित करती है; जब मानस के धरातल पर आती है, तब सारा विश्व प्रभावित होता है। मन में सभी के विचारों के प्रति सद्भाव, सभी प्राणियों के प्रति मङ्गल-भावना के उदय से दिव्य आलोक फैलता है। इसका अभ्यास करके इसके परिणामों को देखा जा सकता है। यदि किसी शत्रु के कल्याण के लिए मन में चिन्तन किया जाय, तो वह मित्र के रूप में परिणत हो जाता है। साधकों ने अपने जीवन में इसे उतारा है।

अनेकान्तदर्शन और मानव-कल्याण

अनेकान्तदर्शन में जो उत्कृष्ट रहस्य सन्निहित है, वह है मानव का परम कल्याणसाधन। दूसरे के विचारों की अवहेलना से अनेक समस्यायें उत्पन्न होती हैं। विश्व में अनेक वाद प्रचलित हैं और प्रत्येक वाद की घोषणा है कि केवल उसी से मानव का कल्याण हो सकता है। इन वादों के समर्थकों में संघर्ष उत्पन्न होता है। एक वाद का समर्थक दूसरे वाद को तुच्छ समझता है और उसे वर्तमान सन्दर्भ में अनुपादेय बताता है। इस प्रकार पारस्परिक संघर्ष से व्यक्ति-व्यक्ति में, समुदाय-समुदाय में, राष्ट्र-राष्ट्र में दरारें पड़ जाती हैं। इससे बड़ी भयंकर स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे मानव का बहुत बड़ा अहित होता है, पृथ्वी हिंसा का केन्द्र बन जाती है।

यह बात निश्चित ही निवेदनीय है कि किसी दर्शन के किसी वैशिष्ट्य के कारण समाज में परिवर्तन नहीं हो सकता। समाज के लिए आधार प्रस्तुत किया गया है। व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह निर्दिशित मार्ग का अनुगमन करे।

अनेकान्तदर्शन में मानव-कल्याण की भावना निहित है। इससे मानससमता की भूमि का उदय होता है। जब मन में भावना स्थिर हो जाती है कि वस्तुओं के अनन्त धर्म हैं, तब मनुष्य में दूसरे के विचारों के प्रति सद्भावना का उदय होता है। दूसरे के मन की अनुभूतियों को ठीक समझ लेने पर वाणी के द्वारा उसका खण्डन नहीं होगा और न उसके विपरीत कार्य। मन के दूषित हो जाने से वचन दूषित हो जाता है और फिर उससे कर्म दूषित हो जाता है। इससे सारे राष्ट्र में दूषण व्याप्त हो जाता है। मानस-समता की सम्प्राप्ति से वचन-समता की सम्प्राप्ति होती है और वचन-समता की सम्प्राप्ति से कर्म-समता की सम्प्राप्ति। फिर विघटन होगा क्यों ?

अनेकान्तदर्शन के रूप में जैनदर्शन की देन प्रशंसनीय है। जिस दृष्टि से जैनदर्शन में अनेकान्तदर्शन का स्वरूप रखा गया है, उसी दृष्टि से उसके सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। सर्वमङ्गलकामना, शान्ति की स्थापना के मूल का अन्वेषण किया गया है। यह मूल अनेकान्तदर्शन है। इसकी सारी भङ्गिमाओं को समझना चाहिए और फिर प्रयत्न करना चाहिए कि जीवन में उसकी परिणति हो। तर्कजाल से अनेकान्तदर्शन की व्याप्ति को नहीं समझा जा सकता। मेरी दृष्टि में इसको समझने के लिए आधारभूत तत्त्व हैं—श्रद्धा, मङ्गलकामना, दया आदि। ☆☆

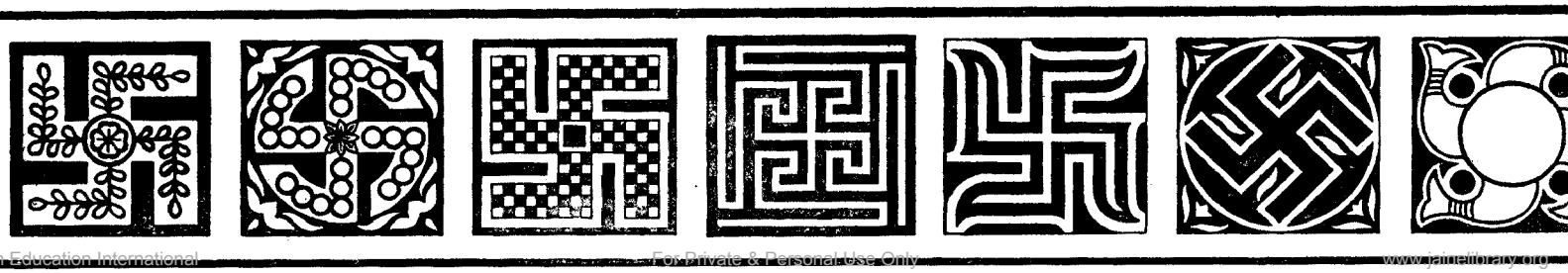

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org